भगवान् महावीर : श्रमण संस्कृति के महान् उत्थापक

डॉ० नन्दकिशोर उपाध्याय

भारत एक विशाल और महान् देश है। यहां की सभ्यता और संस्कृति भी उतनी ही महान् है। यहां न जाने कितने धर्म और कितनी संस्कृतियां फैलीं। इनमें वैदिक, जैन एव बौद्ध संस्कृतियों का आज भी उतना ही महत्त्व है। इन तीन संस्कृतियों के सम्बन्ध में हम ज्यामिति के शब्दों में अगर कहें तो कह सकते हैं कि वैदिक संस्कृति एक ऐसी आधार रेखा है जिस पर बौद्ध और जैन श्रमण संस्कृति की दो भुजाएं आपस में मिलकर समद्विबाहु त्रिभुज का निर्माण करती हैं।

'श्रमण' शब्द की व्याख्या के पहले संस्कृति क्या है? हम इसे समझ लें। संस्कृति शब्द अपने आप में इतना विशाल और महान् है कि इसे किसी परिभाषा में बांध लेना सहज प्रतीत नहीं होता है। श्री रामधारी सिंह 'दिनकर' रचित 'संस्कृति के चार अध्याय'[1] नामक ग्रंथ की प्रस्तावना में पंडित नेहरू ने संस्कृति के सम्बन्ध में लिखा है "संस्कृति है क्या? शब्दकोष उलटने पर इसकी अनेक परिभाषाएं मिलती हैं। एक बड़े लेखक का कहना है कि संसार में जो भी सर्वोत्तम बातें जानी या कही गयी हैं, उनसे अपने आपको परिचित करना संस्कृति है।" एक दूसरी परिभाषा में यह कहा गया है कि "संस्कृति शारीरिक या मानसिक शक्तियों का प्रशिक्षण, दृढ़ीकरण या विकास अथवा परिष्कृति या शुद्धि है। यह सभ्यता का भीतर से प्रकाशित हो उठना है।"[1] इस अर्थ में संस्कृति कुछ ऐसी चीज का नाम हो जाता है जो बुनियादी और अन्तर्राष्ट्रीय हैं। फिर संस्कृति के कुछ राष्ट्रीय पहलू भी होते हैं और इसमें कोई संदेह नहीं कि अनेक राष्ट्रों ने अपना कुछ विशिष्ट व्यक्तित्व तथा अपने भीतर कुछ खास ढंग के मौलिक गुण विकसित कर लिये हैं। भारतीय जनता की संस्कृति का रूप सामाजिक है और उसका विकास धीरे-धीरे हुआ है। एक ओर तो इस संस्कृति का मूल आर्यों से पूर्व मोहन-जोदड़ो आदि की सभ्यता तथा द्रविड़ों की महान् सभ्यता तक पहुंचता है। दूसरी ओर इस संस्कृति पर आर्यों की बहुत ही गहरी छाप है जो भारत में मध्य एशिया से आये थे। पीछे चलकर यह संस्कृति उत्तर-पश्चिम से आने वाली तथा फिर समुद्र की राह से पश्चिम से आने वाले लोगों से बराबर प्रभावित हुई। इस तरह हमारी राष्ट्रीय संस्कृति ने धीरे-धीरे बढ़कर अपना आकार ग्रहण किया। इस संस्कृति में समन्वय तथा नये उपकरणों को पचाकर आत्मसात् करने की अद्भुत योग्यता थी। रविन्द्रनाथ टैगोर ने अपनी कविता 'महामानवेर सागर तीरे' में अनेक सभ्यताओं के समन्वित स्वरूप को संस्कृति बताया है।

संस्कृति को किसी व्याख्या या परिभाषा में बांधना सहज नहीं, किन्तु उसे हम एक रूपक से समझने का प्रयत्न कर सकते हैं। अमरकण्टक पहाड़ से नर्मदा नदी निकलकर अपने साथ चट्टानों को घसीटती हुयी समतल तक आती है। इस यात्रा में ये चट्टान आपस में घिसकर अत्यन्त लघु और सुन्दर रूप ग्रहण कर लेते हैं और लोग इसे ग्रहण कर नर्मदेश्वर भगवान कह कर इसकी पूजा करते हैं। हम समझते हैं ठीक इसी प्रकार सदियों से पूर्वजों की सभ्यताओं और संस्कार के छाप पड़ते-पड़ते जो हमारे पास शेष बची रह जाती है वही हमारी संस्कृति है। भगवान् महावीर और भगवान् बुद्ध इसी श्रमण संस्कृति के दो नर्मदेश्वर हैं।

भगवान् महावीर को श्रमण संस्कृति का उत्थापक कहा गया है। श्रमण का अभिप्राय संन्यासी, योगी, तपस्वी, मुनि, यति एवं साधु से है। पालि के ग्रन्थों में 'समण-ब्राह्मण' का सर्वत्र उल्लेख मिलता है। भगवान् बुद्ध को 'समणो गोतमो' कहकर पुकारा गया है। 'सामञ्ञफलसुत्त' श्रामण्य फल का विवेचन प्रस्तुत करता है। श्रमण और ब्राह्मण कहने से ही पता चलता है कि बुद्ध के पहले से ही दोनों संस्कृतियां साथ-साथ चलती आ रही हैं। कुछ लोगों का विचार है कि श्रमण संस्कृति वैदिक संस्कृति के बाद पनपी है। किन्तु ऐसा प्रतीत नहीं होता है। ब्रह्मजालसुत्त में जिन ६२ मतवादों की चर्चा है, वे अति प्राचीन हैं और वे सब के सब अवैदिक हैं। भगवान् बुद्ध के समय जिन छः धर्माचार्यों की चर्चा है वे भी सब के सब अवैदिक हैं, और इनका स्वरूप एक दिन में नहीं

१. संस्कृति के चार अध्याय – रामधारी सिंह दिनकर, प्रस्तावना।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

बना होगा। हमें लगता है कि जैसे क्लासिकल संस्कृत (Classical Sanskrit) के साथ-साथ जनभाषा चलती रही, वैसे ही वैदिक संस्कृति के साथ-साथ लोक धर्म या लोक संस्कृति भी साथ-साथ चलती रही। भागवान् बुद्ध २४वें बुद्ध थे और महावीर चौबीसवें तीर्थङ्कर थे। इससे भी पता चलता है कि इनके धर्म और विचार वैदिक संस्कृति के पीछे के नहीं बल्कि पूर्व के थे क्योंकि वेदों में भी इनकी चर्चा है।[1] बहुत दिनों तक तो भगवान् महावीर को ही जैनधर्म का जन्मदाता माना जाता रहा है। किन्तु इतिहास ने यह सिद्ध कर दिया है कि महावीर के पूर्व और कई तीर्थङ्कर हो चुके हैं; यजुर्वेद में ऋषभदेव, अरिष्टनेमि और अजितनाथ की चर्चा मिलती है। उदयगिरि एवं खण्डगिरि के हाथीगुम्फा अभिलेख से पता चलता है कि जैन सम्राट् खार-वेल, पुष्यमित्र के समय मगध पर चढ़ाई कर जिस मूर्ति को प्राप्त करने में सफल हुए थे, वह आदि तीर्थङ्कर ऋषभदेव की प्रतिमा बतायी गयी है।[2]

श्रीमद्भागवत में ऋषभदेव को आदि तीर्थङ्कर बताया गया है।[3] ऋषभदेव की गणना मनु से पांचवें पीढ़ी में की गई है। इससे ऋषभदेव की अति प्राचीनता का स्पष्ट बोध होता है। पुराणों में ऋषभदेव को विष्णु के आठवें अवतार के रूप में स्मरण किया गया है। यहां यह द्रष्टव्य है कि गीतगोविन्द में भगवान् बुद्ध को नवम अवतार के रूप में स्वीकार किया गया है।[4] महाभारत के अनुसार अहिंसा धर्म और अहिंसक यज्ञ की कल्पना बुद्ध पूर्व थी जिसके प्रवर्त्तक घोर अंगिरस थे। इन्हें ही नेमिनाथ कहा गया है, जो कृष्ण के गुरु थे। ई० पू० ८वीं सदी में तेईसवें तीर्थङ्कर पार्श्वनाथ हुए। उनका जन्म काशी में हुआ था। काशी के पास ही ग्यारहवें तीर्थङ्कर श्रेयांसनाथ का जन्म हुआ था जिनके नाम पर सारनाथ का नाम चला आता है। श्रमण सम्प्रदाय का पहला संगठन पार्श्वनाथ ने किया था।

इस तरह हम देखते हैं कि जैन धर्म एक बहुत ही प्राचीन धर्म है और श्रमण संस्कृति की एक मुख्य धारा के रूप में ऋषभदेव से अब तक प्रवहमान है। पार्श्वनाथ ने इस धर्म और संस्कृति को एक नया मोड़ दिया और इसे एक व्यवस्थित स्वरूप प्रदान किया। पालि ग्रन्थों में निगण्ठनाथपुत्त और उसके 'चातुर्यामसंवर' की चर्चा मिलती है। चातुर्यामसंवर या चार महाव्रत से पार्श्वनाथ के ही धर्म का बोध होता है। सत्य, अहिंसा, अस्तेय और अपरिग्रह को चातुर्याम संवर बताया गया है।[5]

श्रमणों में कदाचित् प्राचीनतम सम्प्रदाय निगण्ठों अथवा जैनों का ही था। ईसा से अगणित वर्ष पहले से जैनधर्म भारत में फैला हुआ था। आर्य लोग जब मध्यभारत में आये तब यहां जैन लोग मौजूद थे।[6] गया के निकट बराबर और नागार्जुनी पहाड़ियों में निर्मित गुहाओं में अशोक एवं उसके पौत्र दशरथ के अभिलेख मिल रहे हैं जिनमें आजीविकों की चर्चा है। ये आजीवक कौन थे? इनकी संस्कृति क्या थी? पालि ग्रन्थों में आजीविकों की चर्चा मिलती है। ये प्रायः नग्न रहा करते थे और अत्यन्त दुष्कर तपश्चर्या में लीन रहा करते थे। बुद्ध काल में 'मक्खलिपुत्तगोसाल' को इस सम्प्रदाय का नेता माना गया है। वह अपने को उदायी कुण्डियायन का शिष्य बताता है। यह कुण्डियायन बुद्ध से लगभग १५० वर्ष पूर्व था। गोशाल नियतिवादी थे। पालि ग्रन्थों में 'किस्ससंकिच्च' और 'नन्दवच्छ' नामक अन्य दो आजीवक नेताओं का भी जिक्र मिलता है। 'गोसाल' को महावीर का शिष्य भी बताया गया है। हमें लगता है कि इन आजीविकों की भी एक लम्बी परम्परा वैदिक काल से ही रही है जो अन्ततः जैन संस्कृति में मिल गई। ब्रह्मजाल और सामञ्ञफलसुत्त से जैसा पता चलता है, बुद्धकाल में बासठ मतवाद एवं छः प्रमुख सम्प्रदायों की प्रसिद्धि थी। ये श्रमण कहे जाते थे। बुद्ध और महावीर काल में ये ही श्रमण कुछ बुद्ध और कुछ जैन हो गए और दोनों ने अपनी अलग-अलग संख्या बढ़ा ली। आज हमारे सामने मूल रूप से वैदिक, जैन एवं बौद्ध—तीन संस्कृतियां बची रह गई हैं।

---

१. "जैन मान्यता के अनुसार यह धर्म अत्यन्त प्राचीन है और इसका श्रीगणेश सृष्टि से प्रारम्भ होता है। विश्व के विशाल कारण क्रम में तीर्थङ्करों की संख्या ७२० है, किन्तु मानवता के प्रचलित इतिहास में इनकी संख्या २४ है"—भारतीय धर्म एवं संस्कृति—डा० बुद्ध प्रकाश, पृष्ठ ५६.

२. नन्दराजनीतं च का (लिं) ग जिनं संनिवेस······अंग मगध वसुं च नयति - खारवेल का हाथी-गुम्फा अभिलेख, भारत के प्राचीन अभिलेख, प्रभातकुमार मजूमदार, पृ० १००

३ मनु-प्रियव्रत-अग्नीध्र- नाभि-ऋषभदेव—श्रीमद् भागवत—स्कन्ध-५ अध्याय २-६।

४. निन्दसि यज्ञ विधेरह श्रुतिजातम् सदयहृदय-दर्शितपशुघातम्। धृतकेशव-बुद्ध-शरीर, जय जगदीश हरे। (गीत गोविन्दम्)

५. उपालि सुत्त—म० नि०।

६. दि शौर्ट स्टडी इन साइन्स ऑफ कम्परेटिव रीलिजीयन—मेजर जेनरल जे० सी० फारलांग।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org

महावीर जैन (श्रमण) संस्कृति के महान उत्थापक के रूप में जाने जाते हैं। जैसा ऊपर कहा गया है, पार्श्वनाथ ने ही जैन धर्म में चार व्रतों की व्यवस्था कर इस धर्म को सुव्यवस्थित किया है।[1]

जैन विद्वान् पं० बेचरदास जी का कहना है कि "पार्श्वनाथ के बाद दीर्घतपस्वी वर्धमान हुए। उन्होंने अपना आचरण इतना कठिन और दुस्सह रक्खा कि जहां तक मेरा ख्याल है, इस तरह का कठिन आचरण अन्य किसी धर्माचार्य ने आचरित किया हो ऐसा उल्लेख आज तक के इतिहास में नहीं मिलता। वर्धमान का निर्वाण होने से परमत्याग मार्ग के चक्रवर्ती का तिरोधान हो गया।"[2] पालि साहित्य में इसे ही 'अत्तकिलमथानुयोग' कहा है। आत्म-क्लेश का शायद इससे बड़ा कोई रूप अब तक देखने को नहीं मिला है। महावीर को इसका साक्षात् स्वरूप माना गया है। पार्श्वनाथ के चातुर्याम संवर में ब्रह्मचर्य को जोड़कर महावीर ने इसे 'पंचमहाव्रत' का स्वरूप प्रदान किया। इसलिए महावीर को 'पंचमहाव्रतधारी' कहा गया है। अपरिग्रह को तो इस धर्म में अपरिमेय बल प्राप्त है। संग्रह की तो कोई बात नहीं, जिसने अपने शरीर में कोई गांठ ही नहीं लगायी उसे परिग्रह से क्या मतलब ? इसी अर्थ में तो महावीर को निगंठ या 'निर्ग्रन्थ' कहा गया है। महावीर को 'जिन' कहा गया है और 'जिन' के द्वारा जो कहा गया वही 'जैनधर्म' है। जिन शब्द का अर्थ होता है—जीतने वाला। जिसने अपने आत्मिक विकारों पर पूरी तरह से विजय प्राप्त कर ली है वही 'जिन' है। जो 'जिन' बनते हैं वे हम प्राणियों में से ही बनते हैं। प्रत्येक जीवात्मा परमात्मा बन सकता है। इसलिए 'जिन' अपने कर्मों के प्रयत्नों का फल है। जिन को सर्वज्ञ और वीतराग कहा गया है। जिन धर्म के विचार और आचार दो अंग हैं। इनके विचारों का मूल स्याद्वाद में है और आचारों का मूल अहिंसा में। भगवान् महावीर ने इस 'स्याद्वाद' और अहिंसा दोनों का चरम उत्थान किया। स्यात् शब्द का अभिप्राय 'कथंचित्' या 'किसी अपेक्षा' से है। अतः संसार में जो कुछ है वह किसी अपेक्षा से नहीं भी है। इसी अपेक्षावाद का दूसरा स्वरूप 'स्याद्वाद' है जिसका प्रयोग अनेकान्तवाद के लिए भी किया जाता है। अतः अनेकान्त दृष्टि से प्रत्येक वस्तु 'स्यात्-सत्' और 'स्यात्-असत्' है। यह कितना बड़ा उदार सिद्धान्त है, जो इसमें भी कोई अपनी गांठ नहीं लगाता है।

आचारवाद में अहिंसा का सर्वाधिक महत्त्व है। अहिंसा में कायरता नहीं है बल्कि वीरता है। शौर्य आत्मा का एक प्रधान गुण है, जब वह आत्मा के ही द्वारा प्रकट किया जाता है तब उसे वीरता कहते हैं। इस तरह यह अहिंसा या तो वीरता का पाठ पढ़ाती है या क्षमादान का। महावीर के इस रूप को हम क्या कहें—अहिंसा, शौर्य, क्षमा या उससे भी कोई ऊपर की चीज ? इसे ही देखकर तो लोगों ने वर्धमान को उस दिन से 'महावीर' कहा। सत्य, अहिंसा, अपरिग्रह, अस्तेय और ब्रह्मचर्य ये सबके सब वीर-धर्म हैं, साधारण धर्म नहीं है। मगध के पावापुरी नामक स्थान में इस आत्मजयी भगवान् महावीर का परिनिर्वाण हुआ। यहां आज लोग हर वर्ष लाखों की संख्या मे एकत्र होकर दीपावली के रूप में भगवान् के निर्वाण दिवस को मनाते हैं।

आज महावीर के भक्तों ने भगवान् को तो अपना लिया है किन्तु उनके सिद्धान्तों को भुला दिया है। इसीलिए आज 'अणुव्रत' और महाव्रत की महत्ता अत्यधिक बढ़ गयी है। अगर हम एक क्षण के लिए भी इस सिद्धान्त का पालन करते हैं और अपने जीवन में उतारते हैं तो जगत् का बड़ा उपकार करते हैं। आज जो विश्व में इतने तनाव हैं, इससे हमें भगवान् महावीर के मार्ग से ही मुक्ति मिल सकती है। यहीं नहीं, प्रवृत्ति से धीरे-धीरे हटकर निवृत्ति के मार्ग पर चलकर मोक्ष पद को प्राप्त कर सकते हैं। अपने जीवन काल में घूम-घूम कर महावीर ने लोगों को इस सिद्धान्त से परिचित करवाया और इस मार्ग पर चलने के लिये प्रेरित किया। श्रमण संस्कृति का सारा स्वरूप हम महावीर के चरित्र में देख सकते हैं। अपना सारा जीवन इन्होंने इस संस्कृति के उत्थान में लगा दिया। आज लोक में जो कुछ भी है वह इसी तपःपुञ्ज 'जिन' के विकीर्ण तेज की रश्मियां हैं।

---

१. चातुयामसंवरसंवुतो—सब्बवारिवारितो, सब्बवारियुत्तो, सब्बवारिधुतो, सब्बवारिफुटो सामञ्ञफलसुत्तवण्णना, सुमङ्गल विलासिनी, सं० डॉ० महेश तिवारी, पृ० १८८।

२. जैन साहित्य में विकार, पृ० ८७-८८।

Jain Education International For Private & Personal Use Only www.jainelibrary.org